International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 10 Issue 04, April 2020
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

हरियाणवी संत साहित्य में दार्शनिक अनुभूति

शोधार्थीः प्रमिला चौधरी विजय नगर, भिवानी।
शोध निदेशिका : डॉ०सरोज चौधरी हिंदी विभाग सिंघानिया विश्वविद्यालय, झूंझनू राजस्थान।

'दर्षन' षब्द की व्युत्पति 'दृष' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है – देखना, निरीक्षण करना, इसके साथ करणवाचक प्रत्यय 'ल्युट' का योग होने के कारण इसका अर्थ 'जिसके द्वारा देखा जाए' भी किया जाता है।[1] किन्तु षब्दकोष के अनुसार 'दर्षन' सामान्यतः चाक्षुश या प्रत्यक्ष साक्षात्कार का ही सूचक माना जाता है।

हिन्दी में 'दर्षन' का विषिश्ट प्रयोग एक विषेश विशय या षास्त्र के अर्थ में भी होता है। उस स्थिति में इसका अर्थ एक ऐसे षास्त्र के रूप में ग्रहण किया जाता है जिससे आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरूश, जगत, धर्म, मोक्ष, मानव जीवन के उद्देष्य आदि का निरूपण हो। दूसरे षब्दों में इसे तत्वज्ञान सम्बन्धी षास्त्र भी कहा जा सकता है।[2] अंग्रेजी के 'फिलासफी' षब्द की व्युत्पति के अनुसार अर्थ है – ज्ञान के प्रति अनुराग।[3] हरियाणवी लोक कविता का एक उदाहरण देखिए–

- 'ममा मोक्ष पद मिलें निर्वाण।
- षब्द में सूरत लगी जहां तान।।
- कका कर्म क्लेष चौरासी मिटे,
- आवागमन का नाष।
- सतगुरू की कृपा हुई, भया स्वतः प्रकाष।।
- आदि पुरूश के नाम को, जो सुमरे चित लाय।
- वाल्मीकि गुरू कृपा से भव सागर तर जायें।।'

नारदीय सूक्त के ऋशि को विष्व की उत्पति कब ? कैसे? और क्यों हुई? यह प्रष्न पहेली के रूप में व्यथित करता रहता था। जगत का मूल तत्व क्या है? किस

[1] वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन, पृ० ६
[2] डॉ० राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, पृ० ३८
[3] डॉ० रमेश गुप्त, भारतेन्दु हरिशचन्द्र : साहित्य और जीवन दर्शन, पृ० ५१

वस्तु की उत्पति सर्वप्रथम हुई? आदि प्रष्नों से घिरे उनके मस्तिशक ने एक दिन घोशणा कर दी कि सृश्टि के आदिकाल में सिवाय परब्रह्म के अन्य कुछ भी नहीं था।[4]

उपरोक्त परिभाशा के आलोक में कहा जा सकता है कि सृश्टि की उत्पति से पूर्व ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं था अर्थात् ब्रह्मा ने सृश्टि की उत्पति कर उसके नियामक तत्वों की अवधारणा की। साथ ही जीवन और जगत के सभी पदार्थो और वस्तुओं को जीवन दर्षन से सम्पृकत किया।

- 'हर गुरू जय–जय जय ओम्,
- जय ओम् जय जय ओम्।
- आदिष्वरम्, कविष्वरम्, मुनिष्वरम्, ऋिशिष्वरम्,
- पावनमय, अखिलेष्वरम्, सर्व विष्व धारेष्वराम्।
- हर ओम गुरू ओम जय–जय वाल्मीकि गुरू जय–जय
- ओम्.. ।
- आनंद मूतर मनोहरम् भव बंध सेतू तारेष्वरम् हर ओम गुरू
- ओम गुरू ओम जय–जय ओम
- परमेष्वरम्, सर्वेष्वरम्, जगदीष्वरम्, महेष्वरम्,
- हर ओम् गुरू ओम जय–जय वाल्मीकि
- गुरू जय–जय ओम्

डॉ0 राधाकृश्णन् के अनुसार 'दर्षन' एक ऐसा षब्द है जो सुविधाजनक रूप से स्वयं से संदिग्ध है – दार्षनिक विधि से दर्षन का तात्पर्य अन्तर्ज्ञान का प्रमाण मांगना है और उसका तार्किक रूप से प्रचार करना है – दर्षन एक आध्यात्मिक ज्ञान है जो आत्मा रूपी इन्द्रीय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है।[5]

डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, 'दर्षन का मूल उद्देष्य यह है कि ब्रह्म, जीवात्मा आदि का साक्षात्कार कराता हुआ सांसारिक बन्धनों से मानव को मुक्त करके निःश्रेयस अथवा पारलौकिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है।'[6]

[४] डॉ० गायत्री जोशी, हिन्दी प्रबन्धों में जीवन दर्शन, पृ० १७
[५] डॉ० गायत्री जोशी, हिन्दी प्रबन्धों में जीवन-दर्शन, पृ. १७
[६] डॉ० द्वारका प्रसाद सक्सेना, प्रियप्रवास के काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० ३०८-३०६

डॉ0 देवराज, 'दर्षन की गहराई में उतरक मनुश्य को कर्तव्य और औचित्य का ही बोध नहीं होता, वरन् उसका सर्वोच्च वांछनीय ध्येय से साक्षात्कार भी होता है। दर्षन का अर्थ मानव जीवन से सम्बन्धित चरम मूल्यों का अन्वेशण है।[7]

पं0 बलदेव उपाध्याय – दर्षन हमारे जीवन के साथ अनुस्यूत है। उसे अपने जीवन से पृथक नहीं कर सकते। यदि किसी प्रकार कोई उसे निकालकर फेंकने का दुःसाहस करें तो यह जीवन बुद्धिजीवी चेतन प्राणी का न होगा। यह तो नैसर्गिक प्रवृतियों के दासभूत पषु का जीवन होगा। इसलिए पषुओं के साथ आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन के विशय में समानता होने पर भी मनुश्यों की सबसे बड़ी विषेशता है – धर्म धारण करने वाला वस्तु समुदाय उसका विवेक, उसका विचार या उसका दर्षन।[8] दर्षन के महत्व का उल्लेख मानव वर्ग के लिए हितकारी है। मनुश्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसे अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए निरन्तर विरोधी तत्वों से संघर्श करना पड़ता है। ऐसे संघर्शमय वातावरण में यदि मानव संस्कारविहिन व्यवहार करें तो उसमें और पषु में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। अतः मनुश्य अपनी आत्मा में निहित संस्कारों को अपनी विवेक षक्ति द्वारा जो कि उसका दर्षन है, अक्षुण्ण बनाए रखने में असमर्थ हो सकता है।

अतः स्पश्ट है कि भारतीय मानसिक परिवेष के लिए जीवन दर्षन का अपना महत्व है। प्राचीन लोक साहित्य व नये लोक साहित्य में वर्णित जीवन दर्षन में पाठक अपनी समस्याओं के समाधान को खोज कर स्वयं के लिए राह निर्धारित करता है।

- 'ओशध है भव रोग की अकषीर नजर आती है।
- मंत्रों का मंत्र न उससे बड़ा कोई तंत्र।
- अक्षरों या अक्षर न उससे परे कोई जंत्र।
- सर्वत्र रक्षक है बड़ी पाचीर नजर आती है।

७ डॉ० द्वारका प्रसाद सक्सेना, प्रियप्रवास के काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० ३०८-३०६

८ पं० बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ० ५१

- यह मोह का समुंद्र इसका न आरपार है।
- लाखों ही पढ़े रो रहे करते हा हा कार है।
- वह पुल है उस पार का तकबीर नजर आती है।।
- सगर भी है वही ओर लहर भी है वही।
- किस्त भी वहीं और किनारा भी है वही।
- नैया हमारी सिंधू के उस तीर नजर आती है।
- होता है जिस की झूरना से संसार का रचन।
- अमरनाथ उसको श्रद्धा से करता हूं नमन।
- खुलती हई मोहं की जंजीर नजर आती है।

दर्षन का सम्बन्ध प्रत्यक्ष से अथवा देखने से है। यह वह तात्विक ज्ञान है जिसमें पुरूश, जगत, धर्म, मोक्ष और मानव जीवन के सभी उदे्ष्य समाहित हो जाते हे। दर्षन वस्तुतः मानव को सांसारिक बन्धन से मुक्त करने की ओर अग्रसर करता है अर्थात् दर्षन पारलौकिक उन्नति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पड़ाव है। इसी दर्षन के द्वारा मनुश्य चरम मूल्यों की प्राप्त कर सकता है।

लोक साहित्य एक ऐसा सषक्त माध्यम है जिसके द्वारा मनुश्य अपने आंतरिक भावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। दूसरे षब्दों में हम लोक साहित्य को जीवन और जगत् के गतिषील सौन्दर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति भी कह सकते है। लोक साहित्य के अर्न्तगत हम लोक साहित्य जगत के दृष्य, समस्त द्वन्दों, मानव जीवन की समस्त अनुभूतियों को अनुभूत कर सकते है। लोक साहित्य जीवन की अनिवार्यता है और जीवन की व्याख्या ही लोक साहित्य हैं। इसलिए जीवन और लोक साहित्य में बिम्ब–प्रतिबिम्ब का सम्बद्ध है। लोक साहित्य के मूलतः चार तत्व स्वीकार किए जाते है – भाव तत्व, बुद्धि तत्व, कल्पना तत्व और षैली तत्व। लोक साहित्य मानव की भावनाओं की अभिव्यक्ति है किन्तु उन भावनाओं को संयत, गंभीर और क्रमिक रूप प्रदान करने का कार्य बुद्धि का है, कल्पना उसमें सौन्दर्य का संचार करती है, षैली इन तत्वों के सम्मिश्रण को लोक साहित्य के रूप में ढ़ालने का प्रयास करती हैं

लोक साहित्यकार के लिखने का प्रयास भाव तत्व के कारण पूर्ण होता है जो भाव लोक साहित्य को किसी विशय पर कुछ लिखने को प्रेरित करते है। लोक

साहित्यकार लोक साहित्य में अपनी भावनाओं का प्रस्तुतीकरण करता है और देषकाल की सीमा का उल्लंघन करके सर्वदेषीय और सर्वकालिक लोक साहित्य की सर्जना करता है। भावों को जागृत होने पर ही लोक साहित्य लोकहित तथा लोकार्शण की वस्तु बन जाता है और व्यावहारिक जीवन में व्यक्त भावनाएं ही व्यक्ति का जीवन–दर्षन कहलाती है।

'भजन की महिमा का उदाहरण देखिए :

- कब आओगे रमैया मेरे गांव षबरी देखे बाट तेरी।
- खड़ी–खड़ी दिन रैननिहारूं न आए भगवान।
- तेरे दर्ष बिन चैन ना आवे सच्चे दया निधान।
- न जाने तुम क्यों नहीं आये अब तक मेरे राम।।
- कब पाऊंगी दर्षन तेरे मन मंदिर के वासी।
- कौन घड़ी षुभ दर्ष करूंगी घट–घट के वासी।
- कब जागेंगे भाग ये मेरे सुमरण करती नाम।।
- एक–एक पल बरसों सम बीते मन न धीरे–धीर।।
- सेविका से क्या गलती हो गई है सच्चे रघुवीर।
- दिनभर देखूं बाट तुम्हारी दिन ढल हो गई षाम।
- रात दिवस मुझे चैन न आवे नहीं भूख नहीं प्यास।
- भाव तत्व ही लोक साहित्य का मूल तत्व है क्योंकि जब तक भाव ही न होंगे तो अभिव्यक्ति किस प्रकार हो पाएगी। कोई भी वस्तु, घटना, दृष्य अथवा स्थिति तक अभिव्यक्ति नहीं पा सकती, जब तक लोक साहित्यकार के हृदय में उसके प्रति भाव जागृत न हो और भाव जागृति के लिए लोक साहित्यकार का प्रतिभावान होना आवष्यक है। कुछ विषेश गुणों और प्रतिभा के कारण ही सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा लोक साहित्यकार कुछ अधिक संवदेनषील होता है। इसलिए उसका जीवन–दर्षन भी सामान्य की अपेक्षा कुछ अधिक प्रभावषाली होता है। लोक साहित्य में प्रतिबिम्बित जीवन–दर्षन में पाठक अपनी समस्याओं का समाधान खोजते है और अपने जीवन के उद्देष्य का निर्धारण करते है।

यह आवष्यक नहीं कि लोक साहित्य में महान् व्यक्ति का ही जीवन दर्षन हो। जीवन–दर्षन तो किसी भी व्यक्ति का हो सकता है परन्तु सामान्य व्यक्ति का जीवन–दर्षन स्वयं तक सीमित रहता है और लोक साहित्यकार अपने जीवन–दर्षन की अभिव्यक्ति लोक साहित्य के माध्यम से करता है। लोक साहित्यकार के हृदय पटल पर सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा परिस्थितियों का प्रभाव अधिक षीघ्रता से पड़ता हैं। इसलिए लोक साहित्य किसी व्यक्ति विषेश का जीवन–दर्षन पाठकों तक पहुंचाने का कार्य करता है परन्तु जीवन–दर्षन कितना सटीक और युगानुरूप है? यह लोक साहित्यकार के सोचने–विचारने की षक्ति पर निर्भर करता है।

निष्कर्शः

कहा जा सकता ह। कि दार्षनिक दृश्टि के निर्माण में निजि जीवानानुभव, अध्ययन, षिक्षा–दीक्षा, परिवेष, संसर्ग–प्रभाव, विचारों के गाढ़े, हल्के स्पर्ष आदि विविध उपकरण उत्तरदायी होते है।[९]इस कथन के आधार पर हम कह सकते है कि मनुश्य एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज की एक अभिन्नतम इकाई है। अपने ज्ञान एवं अध्ययन के अतिरिक्त सामाजिक परिवेष एवं महान व्यक्तित्व का निर्माण करता है। ध्यान देने की बात है कि उक्त वर्णित उपकरणाों में से कोई एक ही उपकरण जीवन–दर्षन का निर्माता नहीं कहला सकता वरन् सभी उपकरणों की सामूहिकता ही जीवन–दर्षन की निर्माता होती है। इनके अतिरिक्त परम्परा, युग–चिन्तन एवं लक्ष्य (प्राप्य आदर्ष) भी जीवन दर्षन के नियामक तत्व है।

[९] डॉ० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला, पृ० ११४